17. भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृति

• इंदुमति काटदरे

लेखक परिचय

इस अध्याय की लेखिका हैं, इंदुमति काटदरे। इन्दुमति जी गुजरात की रहने वाली हैं। गुजरात में ही अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण कर विसनगर महाविद्यालय में आँग्ल विषय की प्राध्यापक रहीं। शिक्षा क्षेत्र में आपने भारतीय शिक्षा की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु 'पुनरुत्थान विद्यापीठ' की स्थापना की। सम्प्रति आप 'पुनरुत्थान विद्यापीठ' की संस्थापक कुलपति हैं। आप उत्तम अध्येता हैं। तत्त्व को मूल से समझकर उसे व्यवहार योग्य बनाने में आप सिद्धहस्त हैं। आपका गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिंदी व अंग्रेजी भाषा में समान अधिकार है। आप लेखक, अनुवादक, संपादक एवं प्रखर वक्ता भी हैं। आपने धर्मपाल साहित्य (दस खण्ड) का गुजराती व हिंदी दोनों भाषाओं में अनुवाद कर उनका प्रकाशन किया है। शिशुवाटिका तत्त्व एवं व्यवहार, आत्मतत्त्व का विस्तार, शिक्षा का समग्र विकास प्रतिमान, शिक्षा का भारतीय प्रतिमान, समग्र शिक्षा योजना, वर-वधूचयन एवं विवाह संस्कार, अर्थशास्त्रः भारतीय दृष्टि, धर्म शिक्षा-कर्म शिक्षा एवं शास्त्र शिक्षा आपकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें हैं।

आप 'पुनरुत्थान संदेश' नामक एक मासिक पत्र भी निकालती हैं। आपके प्रधान संपादकत्व में 'चिति' नामक शोध पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। आपने परिवार विषयक पाँच ग्रंथों का भी निर्माण किया है। आपकी योजना से 'पुण्य भूमि भारत संस्कृति वाचनमाला' के अन्तर्गत एक सौ लघु पुस्तिकाओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत अध्याय 'भारतीय जीवन दर्शन एवं संस्कृति' शिशुवाटिका तत्त्व एवं व्यवहार नामक पुस्तक में से लिया गया है। इसमें आपने भारतीय चिंतन की समग्रता एवं श्रेष्ठता को अत्यंत ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। इस पाठ में भारत की सांस्कृतिक महत्ता एवं उसके प्रति गौरव की भावना व्यक्त की गई है।

आज विश्व में अनेक देश हैं। प्रत्येक देश का अपना एक मूल स्वभाव होता है। उस मूल स्वभाव के अनुसार ही वह जीवन को देखता है, यही उसका जीवन दर्शन कहलाता है। भारत के मनीषियों ने आत्मस्थित होकर जीवन को देखने व समझने का प्रयास किया। तब इन्हें जीवन जैसा दिखाई दिया, वही भारतीय जीवन दर्शन कहलाया। इस जीवन दर्शन के आधार पर व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहार की पद्धति का शास्त्र बनाया, वही भारतीय संस्कृति है। जीवन के किसी भी स्तर पर किसी भी पहलू का विचार करते समय तथा व्यवस्थाएँ एवं मर्यादाएँ बनाते समय जीवन दर्शन तथा संस्कृति का विचार आधार रूप में रखना आवश्यक हैं। इस दृष्टि से इस अध्याय में भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृति के मूल तत्त्वों का परिचय दिया गया है।

•••

मूल पाठ

सृष्टि एक ही तत्त्व का विस्तार है

उपनिषदों में वर्णन आता है कि ब्रह्म जिसे हम परमात्म तत्त्व भी कहते हैं, उसने एक से अनेक होने की कामना की – 'सोऽकामयत् एकोऽहम् बहुस्याम् इति।' इस प्रकार उस ब्रह्म ने अपने में से ही समग्र सृष्टि का सृजन किया। उसी सृष्टि में से चित्त बना, मन बना, बुद्धि बनी, अहंकार बना तथा ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, पंचतन्मात्रा एवं पंचमहाभूत आदि की उत्पत्ति हुई। उन्हीं में से सूर्य, वायु, पृथ्वी, जल आदि बने। उन्हीं में से वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, अरण्य तथा मनुष्य बने। इन सब में वह आत्मतत्त्व स्वयं अनुस्यूत ही है। स्वयं के इन विविध स्वरूपों का सृजक भी वह स्वयं ही है। इसलिए यह सम्पूर्ण सृष्टि मूल रूप में एक है और आत्मतत्त्व का ही विस्तार है।

जीवन एक व अखण्ड है

इस सृष्टि को ऊपर-ऊपर से देखने पर हमें इसमें अनेक भेद दिखाई देते हैं। मनुष्य-मनुष्य, रूप में, स्वभाव में, कृति में एक-दूसरे से भिन्न हैं। मनुष्य, कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति ये सभी सजीव होने पर भी एक दूसरे से भिन्न हैं। सृष्टि में सारे पदार्थ एक दूसरे से भिन्न हैं परंतु ऊपर से दिखाई देने वाली विविध प्रकार की भिन्नता होने पर भी मूल में जीवन एक ही है। जीवन एक ही है इसलिए अखंड भी है। स्थान के कारण से, अवस्था के कारण से, समय के कारण से उसकी अखंडता भंग नहीं होती। यत्र-तत्र और सर्वत्र, भूत-वर्तमान और भविष्य में, जड़ और चेतन में, वृक्ष और पशु में जीवन एक व अखंड ही है। ये सारे भेद ऊपरी हैं और आभासी हैं। इस सत्य को शिक्षा के माध्यम से जानना आवश्यक है।

सम्पूर्ण सृष्टि का आन्तरिक सम्बन्ध एकात्मता का है

सम्पूर्ण सृष्टि मूलरूप में एक है, इसलिए सबका एक-दूसरे के साथ एकात्मता का संबंध है। इसका अर्थ यह है कि जो आत्मतत्त्व जड़ में है, वही चेतन में है, जो पशु में है, वही मनुष्य में है, जो केरल के मनुष्य में है, वही आसाम के मनुष्य में है, जो भारतीय मनुष्य में है, वही जापान, जर्मनी या अमेरिका के मनुष्य में है। जो आत्मतत्व वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिक्ख या शैव और शाक्त में है वही मुस्लिम एवं इसाई में है और वही यहूदी एवं पारसी में भी है।

प्रेमपूर्ण व्यवहार

जब सब में एक ही आत्मतत्व है तो हमारा सबके साथ स्वाभाविक संबंध प्रेम का है क्योंकि आत्मतत्व का स्वभाव ही प्रेम है। जब हम एक-दूसरे के साथ प्रेम से जुड़ते हैं तो हमें दूसरे को देने में आनंद आता है, दूसरों की सेवा करने में आनन्द आता है। हम पहले दूसरों का विचार करते हैं, बाद में स्वयं का विचार करते हैं। दूसरों के दुःख से दुखी होते हैं और उनका दुःख दूर करने की हमारी स्वाभाविक इच्छा होती है इसीलिए हमारी संस्कृति में दान की महिमा सबसे अधिक है। वृद्धसेवा, गुरुसेवा, रोगीसेवा, दरिद्रसेवा और सृष्टिसेवा को हमारे यहाँ श्रेष्ठ धर्म माना गया है। सेवा का ही प्रकट रूप पूजा है। दूसरों के लिए त्याग कर सकें, इसी दृष्टि से संयम करना सिखाया जाता है। हमारे यहाँ उपभोग से संयम को श्रेष्ठ माना गया है। अतः एकात्मता होने से प्रेम, सेवा, त्याग तथा संयम का आत्मीय व्यवहार होता है।

परस्पर पूरकता एवं चक्रीयता

हमारी मान्यता में सम्पूर्ण जीवन गतिमान है और यह गति चक्रीय है अर्थात् जहाँ से गति प्रारम्भ होती है, वहीं पर पूर्ण होती है। सागर के पानी ने अपनी यात्रा प्रारंभ की तो सागर से बादल बना, बादल से वर्षा, वर्षा से झरने, झरनों से नदी बनी और नदी फिर से आ मिली सागर में। यह पानी की गति भी है और पानी के विविध स्वरूप भी हैं। एक बीज ने अपनी यात्रा शुरू की तो बीज से बना अंकुर, अंकुर से तना, पर्ण, फूल और फल बनकर फिर से बीज बन जाता है। इसी प्रकार से मुनष्य का चक्र है – गर्भ, शिशु, बाल, किशोर, तरुण, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध होते-होते मृत्यु तक पहुँचता है। एक जन्म से दूसरे जन्म में यात्रा करते-करते जहाँ से आया, वहीं पहुँच जाता है। पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और पूर्व जन्म का यह चक्र चलता ही रहता है। इस सृष्टि में ऐसे छोटे-बड़े अनेक आकार के तथा परस्पर जुड़े हुए अनेकानेक चक्र हैं। ये सारे चक्र गतिमान हैं एवं परस्पर पूरक हैं। इस प्रकार से भारतीय दर्शन में जीवन की रचना परस्पर पूरक एवं चक्रीय है।

आत्मतत्त्व अमर है

इस चक्रीय गति के कारण से कहीं भी किसी का नाश नहीं है। आत्मतत्व अजर, अमर, अविनाशी है। इसलिए सारी रचना भी अजर, अमर व अविनाशी ही है। केवल स्थिति में अंतर होता है, आकार बदलता है, रूपांतरण ही होता रहता है। मूलतत्व सदैव एक ही रहता है, जैसे गेहूँ से हलवा बना, रोटी बनी, चूरमा बना। सबका रूप, रंग, आकार, स्वाद अलग-अलग परन्तु सब में मूलतत्त्व गेहूँ तो एक ही होता है। इसी प्रकार जड़-चेतन सब में मूल तत्व 'आत्म' एक ही है। इसलिए हमारे वेद कहते हैं – 'वयं अमृतस्य पुत्राः।' हम अमृत-पुत्र हैं, अजर-अमर हैं। हम परमात्म तत्व के एक अंश आत्मतत्त्व हैं।

कर्मवाद

इस चक्रीय गति का सम्बन्ध हमारे व्यवहार से भी है । हम मनसा-वाचा-कर्मणा जो व्यवहार करेंगे उसका फल हमें ही मिलेगा अर्थात् जब हम विचार के रूप में–भावना के रूप में, कृति के रूप में अथवा केवल बोलकर दूसरों के साथ जो व्यवहार करेंगे उसके परिणाम अंततः हमें ही भुगतने पड़ेंगे। किसी के विषय में बुरा सोचा तो हमारा ही बुरा होगा, भला सोचा तो हमारा ही भला होगा। किसी का अहित किया तो हमारा भी अहित होगा, इसी को कर्मवाद कहा गया है। हमारी स्थिति और गति हमारे ही कर्मों के अधीन है। इसी सूत्र को हमारे यहाँ कथा-कहानी, गीत-भजन, कहावतों-मुहावरों के माध्यम से जनमानस में उतारा गया है। एक अनपढ़ किसान भी कहता है – 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'। एक भिक्षुक कहता है –'तुम एक पैसा दोगे, वह दस लाख देगा।' हम सब कहते हैं – 'जैसी करनी, वैसी भरनी।' हम सबसे यही विवेक युक्त व्यवहार अपेक्षित है।

अधिकार नहीं कर्तव्य

कर्मफल को समझ लेने पर हमारे व्यवहार के सन्दर्भ में जब हम विचार करते हैं तब अधिकार के छोर से नहीं परन्तु कर्तव्य के छोर से सोचते हैं। हम एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, एकात्म हैं यही सोचते हैं। लेने के बारे में नहीं, देने के बारे में सोचते हैं। संघर्ष की दृष्टि से नहीं, समन्वय की दृष्टि से सोचते हैं। हमारे व्यवहार की यह दृष्टि होने के कारण से यहाँ किसी को जीने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। जो सबसे अधिक शक्तिशाली है, योग्यतम है वही पाएगा, ऐसा हमारे यहाँ नहीं होता। हमारे यहाँ जो सबल है, वह दुर्बल का शोषण नहीं करता अपितु पोषण एवं रक्षण करता है। जब हम किसी से कुछ भी लेते हैं तो कृतज्ञता के भाव से ही लेते हैं, अधिकार के भाव से नहीं। हमारे सभी शास्त्रों में, परम्पराओं में, रीति-रिवाजों में यही दृष्टि दिखाई देती है। यही भारतीय जीवन दृष्टि है।

पुरुषार्थ चतुष्टय

जब जीवन एक व अखंड है तो हमारा व्यवहार उसके अनुरूप होना चाहिए। इस दृष्टि से मनीषियों ने हमारे व्यवहार के लिए चार आयाम बताए हैं, उन्हें चार पुरुषार्थ कहा है। ये चार पुरुषार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। 'मोक्ष' जीवन का लक्ष्य है, उसे पाने के लिए मनुष्य को हर संभव प्रयास करने चाहिए। 'काम' प्रत्येक मनुष्य के लिए प्राकृतिक अवस्था है। काम का अर्थ है सभी प्रकार की इच्छाएँ और सभी प्रकार की मनःस्थिति अर्थात् राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद, मत्सर, क्रोधादि ये काम के ही रूप हैं। इन सबकी प्राप्ति के लिए 'अर्थ' साधन है। सभी प्रकार के उद्यम, क्रियाएँ, व्यवसाय आदि के माध्यम से प्राप्त होने वाली सम्पत्ति, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा आदि सब अर्थ हैं। 'धर्म' इन सबको नियमन में रखने वाली व्यवस्था है। धर्म व्यक्ति जीवन से लेकर वैश्विक स्तर तक की अत्यन्त सुगठित व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अधीन जब अर्थ और काम चलते हैं तब मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की यह अत्यन्त मूलगामी, सर्वस्पर्शी एवं समग्रता वाली पुरुषार्थ चतुष्टय की रचना है। यही रचना हमें पूर्णत्व की ओर ले जाती है।

जीवन का लक्ष्य मोक्ष

अपने मूल स्वरूप को सर्वार्थ में जानना और उसी में स्थित होना ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। जब मनुष्य का जीवन सर्वश्रेष्ठ है तो उसका लक्ष्य भी सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए, इसी को हमारे यहाँ मोक्ष कहा गया है। मोक्ष अर्थात् मैं देह नहीं, प्राण नहीं, मन नहीं, बुद्धि भी नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। आत्मा की अनुभूति होना ही सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति है। उसके बाद हमारा जो सहज व्यवहार होगा, वही श्रेष्ठ व्यवहार होगा। ऐसे मनुष्य के व्यवहार के संबंध में जब हम विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि यह व्यवहार प्रेम का ही होगा, घृणा का नहीं। देने का ही होगा, लेने का नहीं। संयम का ही होगा, भोग का नहीं। रक्षण का ही होगा, शोषण का नहीं। कृतज्ञता का ही होगा, कृतघ्नता का नहीं तथा कर्तव्यनिष्ठ ही होगा, अधिकारनिष्ठ नहीं। हमारे लिए मोक्ष का यही अर्थ अभिप्रेत है।

भारत की चिरंजीविता का रहस्य

विश्व का इतिहास देखने पर ध्यान में आता है कि अनेक राष्ट्र, अनेक संस्कृतियाँ आईं और गईं परन्तु भारत सबसे पहले भी था और आज भी है। भारत की जीवन को देखने की एक समग्र दृष्टि है तथा जीवन को धारण करने की व्यवस्था इतनी अधिक सर्वहितकारक है कि इनके रहते भारत का नाश हो ही नहीं सकता। भारत अपने जीवन दर्शन एवं संस्कृति के कारण ही चिरंजीवी है।

हमारा यह भाग्य है कि हमें मनुष्य जन्म मिला, उससे भी बड़ा अहोभाग्य यह है कि हमें ईश्वर ने भारत भूमि में पैदा किया। उस भारत भूमि में, जिसने 'सर्वभूतहितेरता' की कामना की, जिसने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अलख जगाई, जिसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का घोष कर संपूर्ण विश्व के साथ एकात्मता का संबंध स्थापित किया, जिसने संपूर्ण विश्व को अपने जैसा श्रेष्ठ बनाने हेतु 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का निश्चय किया। ऐसी वत्सल भारत भूमि के समग्र जीवन दर्शन के अनुरूप हम सब अपना जीवन जीकर इस मनुष्य जन्म की सार्थकता सुनिश्चित कर सकते हैं ।

•••

शब्दार्थ

आत्मस्थित–स्वयं में स्थित/ अनुस्यूत–मिला हुआ/ आभासी–बनावटी/ अजर–जरा (वृद्धावस्था) रहित। वाचा–वाणी द्वारा/ अभिप्रेत–जानने योग्य

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय दर्शन में जीवन की रचना है –
   (क) पूरक (ख) चक्रीय
   (ग) पूरक एवं चक्रीय (घ) असत् ( )
2. जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है –
   (क) धर्म (ख) अर्थ
   (ग) काम (घ) मोक्ष ( )

अतिलघूत्तरात्मक

1. 'सर्वभूतहितेरताः' से क्या आशय है ?
2. 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से क्या भावना ध्वनित होती है ?
3. मनुष्य और पशु में कौन-सा तत्व समान है ?
4. सृष्टि का सृजन किस तत्व में से हुआ है ?

लघूतरात्तमक प्रश्न

1. सृष्टि निर्माण का क्रम क्या बताया गया है ?
2. भारत की चिरंजीविता का रहस्य क्या है ?
3. धर्म से क्या आशय है ?
4. 'कर्मवाद' वैज्ञानिक सिद्धांत कैसे है ? समझाइए।

5. संयम को उपभोग से श्रेष्ठ क्यों माना गया है ?

6. सभी मनुष्यों की एकात्मता का रहस्य क्या है ?

7. मानव की पूर्णता से क्या आशय है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय जीवन-दर्शन क्या है ? समझाइए।

2. चारों पुरुषार्थ किस प्रकार हमें पूर्णता की ओर ले जाने वाले हैं ?

•••

यह भी जानें

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

(क) पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे – मिलाकर, पीकर, रोकर आदि।

(ख) कर + कर से 'करके' और करा + कर से 'कराके' बनेगा।

•••